जैन कथा साहित्य : एक समीक्षात्मक सर्वेक्षण

प्रो. सागरमल जैन

कथा साहित्य का उद्‌भव उतना ही प्राचीन है, जितना इस पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व । चाहे साहित्यिक दृष्टि से कथाओं की रचना कुछ परवर्ती हो, किन्तु कथा-कथन की परम्परा तो बहुत पुरानी है । कथा साहित्य के लिए अंग्रेजी में Narrative literature शब्द प्रचलित है, अतः आख्यान या रूपक के रूप में जो भी कहा जाता है या लिखा जाता है, वह सभी कथा के अन्तर्गत आता है । सामान्य अर्थ में कथा वह है जो कही जाती है । किन्तु जब हम कथा साहित्य की बात करते हैं, तो उसका तात्पर्य है, किसी व्यक्ति या वस्तु के सम्बन्ध मे कथित या लिखित रूप में जो भी हमारे पास है, चाहे वह किसी भी भाषा में हो, कथा के अन्तर्गत आता है । यह सत्य है कि पूर्व में कथाओं को कहने की परम्परा मौखिक रूप में रही है, बाद में उन्हें लिखित रूप दिया गया । दूसरे शब्दों में पूर्व में कथाएं श्रुत परम्परा से चलती रही है, बाद में ही उन्हें लिखित रूप दिया गया है, यह बात जैन कथा साहित्य के सन्दर्भ में भी सत्य है । जैन परम्परा में भी कथाएं पहले अनुश्रुति के रूप में ही चलती रही है और यही कारण है कि लौकिक परम्पराओं के आधार पर उनमें समय-समय पर संक्षेपण, विस्तारण, परिशोधन, परिवर्तन एवं सम्मिश्रण होता रहा है । उनका स्वरूप तो उस समय स्थिर हुआ होगा, जब उन्हें लिखित स्वरूप प्रदान कर पुस्तकारूढ़ किया गया होगा ।

मौखिक परम्परा के रूप में इन कथाओं ने समग्र भूमण्डल की यात्राएं की है और उनमें विभिन्न धर्मों एवं सामाजिक संस्कृतियों के माध्यम से आंशिक परिवर्तन और परिवर्धन भी हुआ है । विभिन्न देशों में प्रचलित कथाओं में भी आंशिक साम्य और आंशिक वैषम्य देखा जाता है, हितोपदेश और ईसप की कथाएं इसका प्रमाण है । जैन कथाओं में भी इन लोक-कथाओं के अनेक आख्यान सम्मिलित हो गये है, जैसे- शेख चिल्ली की कथा । यहां यह भी ज्ञातव्य है कि इन कथाओं के पात्र देव, मनुष्य और पशु पक्षी सभी रहे हैं । जहां तक जैन कथाओं का प्रश्न है उनके भी मुख्य

पात्र देव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी देखे जाते है । जैन कथाओं में जैन लेखकों के द्वारा तो देवों एवं मनुष्यों के साथ-साथ पशु-पक्षी ही नहि, वृक्षों और फूलों को भी रूपक बनाकर कथाओं को प्रस्तुत किया जाता रहा है। आचाराङ्ग एवं ज्ञाताधर्मकथा में कछुए की रूपक कथा के साथ-साथ सूत्रकृताङ्ग में कमल को भी रूपक बनाकर भी कथा वर्णित है । लोक परम्परा में प्रेमाख्यान के रूप में हिन्दी में तोता-मैना की कहानियां आज भी प्रचलित है, किन्तु ऐसे प्रेमाख्यान जैन परम्परा में नहीं हैं । उसमें पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, फल-फूल आदि के रूपक भी तप-संयम की प्रेरणा के हेतु ही है।

जैन कथा साहित्य का सामान्य स्वरूप

यहां यह भी ज्ञातव्य है कि जब भी हम जैन कथा-साहित्य की बात करते है वह बहु-आयामी और व्यापक है । रूपक, आख्यानक, संवाद, लघुकथाएं, एकांकी, नाटक, खण्ड काव्य, चरितकाव्य और महाकाव्य से लेकर वर्तमान कालीन उपन्यास शैली तक की सभी कथा-साहित्य की विधाएँ उसके अन्तर्गत आ जाती है । आज जब हम जैन कथा-साहित्य की बात करते है, तो जैन परम्परा में लिखित इन सभी विधाओं का साहित्य इसके अन्तर्गत आता है । अतः जैन कथा साहित्य बहुविध और बहु-आयामी है।

पुनः यह कथा साहित्य भी गद्य, पद्य और गद्य-पद्य मिश्रित अर्थात् चम्पू इन तीनों रूपों में मिलता है । मात्र इतना ही नहीं वह भी विविध भाषाओं और विविध कालों में लिखा जाता रहा है ।

जैन साहित्य में कथाओं के विविध प्रकार

जैन आचार्यों ने विविध प्रकार की कथाएं तो लिखीं, फिर भी उनकी दृष्टि विकथा से बचने की ही रही है । दशवैकालिकसूत्र में कथाओं के तीन वर्ग बताये गये है – अकथा, कथा और विकथा । उद्देश्यविहीन, काल्पनिक और शुभाशुभ की प्रेरणा देने से भिन्न उद्देश्यवाली कथा को अकथा कहा गया है । जबकि कथा नैतिक उद्देश्य से युक्त कथा है । और विकथा वह है, जो विषय-वासना को उत्तेजित करे । विकथा के अन्तर्गत जैन आचार्यों ने राजकथा, भातकथा, स्त्रीकथा और देशकथा को लिया है । कही-कहीं राजकथा के स्थान पर अर्थकथा और स्त्रीकथा के स्थान पर कामकथा का

भी उल्लेख मिलता है ।

दशवैकालिक में अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा और मिश्रकथा- ऐसा भी एक चतुर्विध वर्गीकरण मिलता है और वहां इन कथाओं के लक्षण भी बताये गये है । यह वर्गीकरण कथा के वर्ण्य विषय पर आधारित है । पुनः दशवैकालिक में इन चारों प्रकार की कथाओं में से धर्मकथा के चार भेद किये गये हैं । धर्मकथा के वे चार भेद है – आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेगिनी और निर्वेदनी । टीका के अनुसार पापमार्ग के दोषों का उद्‌भावन करके धर्ममार्ग या नैतिक आचरण की प्रेरणा देना आक्षेपणी कथा है । अधर्म के दोषों को दिखाकर उनका खण्डन करना विक्षेपणी कथा है । वैराग्यवर्धक कथा संवेगिनी कथा है । एक अन्य अपेक्षा से दूसरो के दुःखों के प्रति करुणाभाव उत्पन्न करनेवाली कथा संवेगिनी कथा है । जबकि जिस कथा से समाधिभाव और आत्मशांति की उपलब्धि हो या जो वासना और इच्छाजन्य विकल्पों को दूर कर निर्विकल्पदशा में ले जाये वह निर्वेदनी कथा है । ये व्याख्याएं मैंने मेरी अपनी समज के आधार पर की है । पुनः धर्मकथा के इन चारों विभागों के भी चार-चार उपभेद किये गये है किन्तु विस्तार भय से यहां उस चर्चा में जाना उचित नहीं होगा । यहां मात्र नाम निर्देश कर देना ही पर्याप्त होगा ।

(अ) आक्षेपनी कथा के चार भेद है - १. आचार २. व्यवहार ३. प्रज्ञप्ति और ४. दृष्टिवाद.

(ब) विक्षेपनी कथा के चार भेद है – १. स्वमत की स्थापना कर, फिर उसके अनुरूप परमत का कथन करना. २. पहले परमत का निरूपण कर, फिर उसके आधार पर स्वमत का पोषण करना. ३. मिथ्यात्व के स्वरूपकी समीक्षा कर फिर सम्यक्त्व का स्वरूप बताना और ४. सम्यक्त्व का स्वरूप बताकर फिर मिथ्यात्व का स्वरूप बताना ।

(स) संवेगिनी कथा के चार भेद है – १. शरीर की अशुचिता, २. संसार की दुःखमयता और ३. संयोगो का वियोग अवश्यभावी है – ऐसा चित्रण कर ४. वैराग्य की ओर उन्मुख करना ।

(द) निर्वेदनी कथा का स्वरूप है – आत्मा के अनन्त चतुष्टय का

वर्णन कर व्यक्ति में ज्ञाता दृष्टाभाव या साक्षीभाव उत्पन्न करना ।

विभिन्न भाषाओं में रचित जैन कथा साहित्य

भाषाओं की दृष्टि से विचार करें तो जैन कथा साहित्य प्राकृत, संस्कृत, कन्नड, तमिल, अपभ्रंश, मरूगुर्जर हिन्दी, मराठी, गुजराती और क्वचित् रूप में बंगला में भी लिखा गया है । मात्र यही नहीं प्राकृत और अपभ्रंश में भी उन भाषाओं के अपने विविध रूपों में वह मिलता है । उदाहरण के रूप में प्राकृत के भी अनेक रूपों यथा अर्धमागधी, जैन शौरसेनी, महाराष्ट्री आदि में जैन कथा साहित्य लिखा गया है और बहुत कुछ रूप में आज भी उपलब्ध है । गुणाढ्य ने अपनी बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में लिखी थी, यद्यपि दुर्भाग्य से आज वह उपलब्ध नहीं है । आज जो जैन कथा साहित्य विभिन्न प्राकृत-भाषाओं में उपलब्ध है उनमें सबसे कम शौरसेनी में मिलता है । उसकी अपेक्षा अर्धमागधी या महाराष्ट्री प्रभावित अर्धमागधी मे अधिक है । क्योंकि उपलब्ध आगम और प्राचीन आगमिक व्याख्याएं इसी भाषा में लिखित हैं । महाराष्ट्री प्राकृत में जैन कथा साहित्य उन दोनों भाषाओं की अपेक्षा भी विपुल मात्रा में प्राप्त होता है और इसके लेखन में श्वेताम्बर जैनाचार्यो एवं मुनियों का योगदान अधिक है । दिगम्बर आचार्यों की रुचि अध्यात्म और कर्म साहित्य में अधिक रही । फलतः भगवती आराधना में संलेखना के साधक कुछ व्यक्तियों के नाम निर्देश को छोड़कर उसमें अधिक कुछ नहीं मिलता है । यद्यपि कुछ जैन नाटकों में शौरसेनी का प्रयोग अवश्य देखा जाता है, इस परम्परा में हरिषेण का बृहत्कथाकोश ही एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जा सकता है । इसके अतिरिक्त आराधना कथाकोश भी है । अर्धमागधी और अर्धमागधी और महाराष्ट्री के मिश्रित रूप वाले आगमों और आगमिक व्याख्याओं में जैन कथाओं की विपुलता है, किन्तु उनकी ये कथाएं मूलतः चरित्र-चित्रण रूप तथा उपदेशात्मक ही है, साथ ही वे नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास करने की दृष्टि से लिखी गई है । आगमिक व्याख्याओं में निर्युक्ति साहित्य में मात्र कथा का नाम-निर्देश या कथा-नायकके नाम का निर्देश ही मिलता है । इस दृष्टि से निर्युक्तियों की स्थिति भगवती आराधना के समान ही है, जिनमें हमें कथा निर्देश तो मिलते है, किन्तु कथाएं नहीं

है । कथाओं का विस्तृत रूप भाष्यों की अपेक्षा भी चूर्णि या टीका साहित्य में ही अधिक मिलता है । चूर्णियां जैन कथाओं का भण्डार कही जा सकती है । चूर्णि साहित्य की कथाएं उपदेशात्मक तो है ही, किन्तु वे आचारनियमों के उत्सर्ग और अपवाद की स्थितियों को स्पष्ट करने की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । किन परिस्थितियों मे कौन आचरणीय नियम अनाचरणीय बन जाता है इसका स्पष्टीकरण चूर्णी की कथाओं में ही मिलता है । इसी प्रकार विभिन्न परिस्थितियों में किस अपराध का क्या प्रायश्चित्त होगा, इसकी भी सम्यक् समझ चूर्णियों के कथनकोंसे ही मिलती है । इस प्रकार चूर्णीगत कथाएं जैन आचारशास्त्र की समस्याओंके निराकरण में दिशा-निर्देशक है।

जहां महाराष्ट्री प्राकृत के कथा साहित्य का प्रश्न है, यह मुख्यतः पद्यात्मक है और इसकी प्रधान विधा खण्डकाव्य, चरितकाव्य और महाकाव्य है । यद्यपि इसमें धूर्ताख्यान जैसे कथापरक एवं गद्यात्मक और भी उपलब्ध होते है । इस भाषा में सर्वाधिक कथा साहित्य लिखा गया है और अधिकांशतः यह आज उपलब्ध भी है ।

प्राकृत के पश्चात् जैन कथा-साहित्य के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ संस्कृत भाषा में भी उपलब्ध होते हैं । दिगम्बर परम्परा के अनेक पुराण, श्वेताम्बर परम्परा में हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र आदि अनेक चरित्र काव्य संस्कृत भाषा में लिखे गये है । इसके अतिरिक्त जैन नाटक और दूतकाव्य भी संस्कृत भाषा में रचित है । दिगम्बर परम्परा में वराङ्गचरित्र आदि कुछ चरित्रकाव्य भी संस्कृत में रचित है । ज्ञातव्य है कि आगमों पर वृत्तियां और टीकाएं भी संस्कृत भाषा में लिखी गई है । इनके अन्तर्गत भी अनेक कथाएं संकलित है । यद्यपि इनमें अधिकांश कथाएं वही होती है जो प्राकृत आगमिक व्याख्याओं में संग्रहित है । फिर भी ये कथाएं चाहे अपने वर्ण्य विषय की अपेक्षा से समान हो, किन्तु इनके प्रस्तुतीकरण की शैली तो विशिष्ट ही है । उस पर उस युग के संस्कृत लेखकों की शैली का प्रभाव देखा जाता है । इसके अतिरिक्त अनेक प्रबन्ध ग्रन्थ भी संस्कृत मे लिखित है ।

संस्कृत के पश्चात् जैन आचार्यों का कथा-साहित्य मुख्यतः अपभ्रंश और उसके विभिन्न रूपों में मिलता है । किन्तु यह ज्ञातव्य है कि अपभ्रंश

में भी मुख्यतः चरितकाव्य ही विशेष रूप से लिखे गये है । स्वयम्भू आधि ने अनेक लेखकों ने चरित काव्य भी अपभ्रंश में लिखे है – जैसे पउमचरिउ आदि ।

भाषाओं की अपेक्षा से अपभ्रंश के पश्चात् जैनाचार्यों ने मुख्यतः मरू गुर्जर अपनाया । कथासाहित्य की दृष्टि से इसमें पर्व कथाएं एवं चरितनायकों के गुणों को वर्णित करने वाली छोटी-बड़ी अनेक रचनाएं मिलती है । विशेष रूप से चरितकाव्य और तीर्थमालाएं मरूगुर्जर में ही लिखी गई है । तीर्थमालाएं तीर्थों सम्बन्धी कथाओं पर ही विशेष बल देती है । चरित, चौपाई, ढाल आदि विशिष्ट व्यक्तियों के चरित्र पर आधारित होती है और वे गेय रूप में होती है । इसके अतिरिक्त इसमें 'रासो' साहित्य भी लिखा गया है जो अर्ध ऐतिहासिक कथाओं का प्रमुख आधार माना जा सकता है ।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिन्दी, गुजराती, मराठी और बंगला में भी जैन कथा साहित्य लिखा गया है । महेन्द्रमुनि (प्रथम), उपाध्याय अमरमुनिजी एवं उपाध्याय पुष्करमुनि जी ने हिन्दी भाषा में अनेक कथाएं लिखी है, इसमें महेन्द्रमुनिजीने लगभग २५ भागों में, अमरमुनिजी ने ५ भागों में और उपाध्याय पुष्करमुनिजी ने १४० भागों में जैन कथाएं लिखी है । एक भाग में भी एक से अधिक कथाएं भी वर्णित है । ये सभी कथाएं कथावस्तु और नायकों की अपेक्षा से तो पुराने कथानकों पर आधारित है, मात्र प्रस्तुतीकरण की शैली और भाषा मे अन्तर है । इसके अतिरिक्त उपाध्याय केवल मुनि जी और कुछ अन्य लेखकों ने उपन्यास शैली में अनेक जैन उपन्यास भी लिखे है । जहां तक मेरी जानकारी है वर्तमान में पाँच सौ से अधिक जैन कथाग्रन्थ हिन्दी में उपलब्ध है और इनमें भी कथाओं की संख्या तो सहस्राधिक होगी ।

हिन्दी के अतिरिक्त जैन कथा साहित्य गुजराती भाषा मे भी उपलब्ध है, विशेष रूप से आधुनिक काल के कुछ श्वेताम्बर आचार्यों और अन्य लेखकों ने गुजराती भाषा में अनेक जैन कथाएं एवं नवलकथाएं लिखी है। यद्यपि इस सम्बन्ध में मुझे विशेष जानकारी तो नहीं है फिर भी जो छुट-पुट जानकारी डॉ. जितेन्द्र बी. शाह से मिली है, उसके आधार पर इतना

तो कहा जा सकता है कि गुजराती भाषा मे जैन कथाओं पर लगभग तीन सौ से अधिक ग्रन्थ उपलब्ध है । गुजराती कथा लेखकों में रतिलाल देसाई, चुन्नीलाल शाह, बेचरदास दोशी, मोहनलाल धामी, विमलकुमार धामी, कुमारपाल देसाई, धीरजलाल शाह तथा आचार्य भद्रगुप्तसूरि, भुवनभानुसुरि, शीलचन्द्रसूरि, प्रद्युम्नसूरि, रत्नसुन्दरसूरि, चन्द्रशेखरसूरि आदि प्रमुख है । इसके साथ ही दिगम्बर परम्परा में भी कुछ कथा ग्रन्थ हिन्दी एवं मराठी मे लिखे गये है। इसके अतिरिक्त गणेशजी लालवानी ने बंगला में भी कुछ जैन कथाएं लिखी है।

जहां तक दक्षिण भारतीय भाषाओं का प्रश्न है तमिल, कन्नड में अनेक जैन कथा ग्रन्थ उपलब्ध है । इनमें तमिल ग्रन्थो में जीवनकचिन्तामणि, श्रीपुराणम् आदि प्रमुख है । इसके साथ कन्नड में भी कुछ जैन कथा ग्रन्थ है, इनमें 'आराधनाकथै' नामक एक ग्रन्थ है, जो आराधानाकथाकोश पर आधारित है । इस प्रकार हम देखते है कि जैन कथा साहित्य बहुआयामी होने के साथ-साथ विविध भाषाओं में भी रचित है । तमिल एवं कन्नड़ के साथ-साथ परवर्ती काल में तेलुगु, मराठी आदि में भी जैन ग्रन्थ लिखे गये है ।

विभिन्न कालखण्डों का जैन कथा साहित्य

कालिक दृष्टि से विचार करने पर हम पाते है कि जैन कथा साहित्य ई.पू. छठ्ठी शताब्दी से लेकर आधुनिक काल तक रचा जाता रहा है । इस प्रकार जैन कथा साहित्य की रचना अवधि लगभग सत्तावीस सौ वर्ष है । इतनी सुदीर्घ कालावधि में विपुल मात्रा में जैन आचार्यों ने कथा साहित्य की रचना की है । भाषा की प्रमुखता के आधार पर कालक्रम के विभाजन की दृष्टि से इसे निम्न पांच कालखण्डों मे विभाजित किया जा सकता है–

१. आगमयुग – ईस्वी पूर्व ६ ठी शती से ईसा की पाँचवी शती तक।

२. प्राकृत आगमिक व्याख्यायुग– ईसा की दूसरी शती से ईसा की ८ वी शती तक ।

३. संस्कृत टीका युग या पूर्वमध्ययुग– ईसा की ८ वी शती से १४ वीं शती तक ।

४. उत्तर मध्ययुग या अपभ्रंश एवं मरूगुर्जर युग– ईसा की १४ वीं शती से १८ वी शती तक ।

५. आधुनिक भारतीय भाषा युग – ईसा की १९वीं शती से वर्तमान तक ।

भारतीय इतिहास की अपेक्षा से इन पाँच कालखण्डों का नामकरण इस प्रकार भी कर सकते है – १. पूर्वप्राचीन काल २. उत्तरप्राचीन काल ३. पूर्वमध्य काल ४. उत्तरमध्य काल और ५. आधुनिक काल । इनकी समयावधि तो पूर्ववत् ही मानना होगी । यद्यपि कहीं-कहीं कालावधि मे ओव्हर लेपिंग (अतिक्रमण) है । फिर भी इन कालखण्डों की भाषाओं एवं विधाओं की अपेक्षा से अपनी-अपनी विशेषताएं भी है । आगे हम इन काल खण्डों के कथा साहित्य की विशेषताओं को लेकर ही कुछ चर्चा करेंगे–

प्रथम कालखण्ड मे मुख्यत: अर्धमागधी प्राचीन आगमों की कथाएँ आती है – ये कथाएँ मुख्यत: आध्यात्मिक उपदेशों से सम्बन्धित है और अर्धमागधी प्राकृत में लिखी गई हैं । दूसरे ये कथाएँ संक्षिप्त और रूपक के रूप में लिखी गई है । जैसे - आचाराङ्ग में शैवाल छिद्र और कछुवे द्वारा चाँदनी दर्शन के रूपक द्वारा सद्धर्म और मानवजीवन की दुर्लभता का संकेत है । सूत्रकृताङ्ग मे श्वेतकमल के रूपक से अनासक्त व्यक्ति द्वारा मोक्ष की उपलब्धि का संकेत है । स्थानाङ्गसूत्र में वृक्षों, फलों आदि के विविध रूपकों द्वारा मानव-व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों को समझाया गया है । समवायाङ्ग के परिशिष्ट में चौवीस तीर्थङ्करों के कथासूत्रों का नाम-निर्देश है। इसी प्रकार भगवती में अनेक कथारूप संवादो के माध्यम से दार्शनिक समस्याओं के निराकरण है । इसके अतिरिक्त आचाराङ्ग के दोनों श्रुतस्कन्धों के अन्तिम भागों मे सूत्रकृताङ्ग के षष्टम अध्ययन में और भगवती में महावीर के जीवनवृत्त के कुछ अंशो को उल्लेखित किया गया है । इनके कल्पसूत्र और उसकी टीकाओं साथ तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महावीर के जीवन के कथानकों में अतिशयों का प्रवेश कैसे-कैसे हुआ है ।

जैन कथासाहित्य की अपेक्षा से ज्ञाताधर्मकथा की कथाएँ अति

महत्त्वपूर्ण है, इसमें संक्षेप रूप से अनेक कथाएँ वर्णित है । प्रथम मेघकुमार नामक अध्ययन में वर्तमान मुनि जीवन के कष्ट अल्प है और उपलब्धियाँ अधिक है, यह बात समझायी गयी है । दूसरे अध्ययन में धन्ना सेठ द्वारा विजयचोर को दिये गये सहयोग के माध्यम से अपवाद में अकरणीय करणीय हो जाता है यह समझाया गया है । इसी प्रकार इसके सातवें अध्ययन में यह समझाया गया है कि योग्यता के आधार पर दायित्वों का विभाजन करना चाहिये । मयुरी के अण्डे के कथानक से यह समझाया गया है कि अश्रद्धा का क्या दुष्परिणाम क्या होता है । मल्ली के कथानक में स्वर्णप्रतिमा के माध्यम से शरीर की अशुचिता को समझाया गया है । कछुवे के कथानक के माध्यम से संयमी जीवन की सुरक्षा के लिए विषयों के प्रति उन्मुख इन्द्रियो के संयम की महत्ता को बताया गया है । उपासकदशा में श्रावकों के कथानकों के माध्यम से न केवल श्रावकाचार को स्पष्ट किया गया है, अपितु साधना के क्षेत्र में उपसर्गों में अविचलित रहने का संकेत भी दिया गया है । अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा और विपाकदशा में विविध प्रकार की तप साधनाओं के स्वरूप को और उनके सुपरिणामों को तथा दुराचार के दुष्परिणामों को समझाया गया है ।

उपाङ्ग साहित्य में रायपसेनीयसुत्त में अनेक रूपकों के माध्यम से आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध किया गया है । इसी प्रकार उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि में भी उपदेशप्रद कुछ कथानक वर्णित है । नन्दीसूत्र में औपपातिकी बुद्धि के अन्तर्गत रोहक की १४ और अन्य की २६ ऐसी कुल ४० कथाओं, वैनियकी बुद्धि की १५, कर्मजाबुद्धि की १२ और पारिणामिकी बुद्धि की २१ कथाओं इस प्रकार कुल ८८ कथाओं का नाम संकेत है । उसकी टीका मे इन कथाओं का विस्तृत विवेचन भी उपलब्ध होता है । किन्तु मूल ग्रन्थ में कथाओं के नाम संकेत से यह तो ज्ञात हो जाता है कि नन्दीसूत्र के कर्ता को उन सम्पूर्ण कथाओं की जानकारी थी । इस काल की जैन कथाएँ विशेष रूप से चरित्र चित्रण सम्बन्धी कथाएँ ऐतिहासिक कम और पौराणिक अधिक प्रतीत होती है । यद्यपि उनको सर्वथा काल्पनिक भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि उनमें वर्णित कुछ व्यक्ति ऐतिहासिक भी है ।

आगमयुग की कथाओं में कुछ चरितनायको के ही पूर्व जन्मों की चर्चा है। उनमें अधिकांश की या तो मुक्ति दिखाई गई है या फिर भावी जन्म दिखाकर उनकी मुक्ति का संकेत किया गया है । तीर्थङ्करों के भी अनेक पूर्वजन्मों का चित्रण इनमें नही है । समवायाङ्ग आदि में मात्र एक ही पूर्व भव का उल्लेख है। कहीं-कहीं जाति स्मरण ज्ञान द्वारा पूर्वभवों की चेतना की निर्देश भी किया गया है । आगमों में जो जीवनगाथाएँ वर्णित है, उनमें साधनात्मक पक्ष को छोड़कर कथाविस्तार अधिक नहीं है । कहीं-कहीं तो दूसरे किसी वर्णित चरित्र से समरूपता दिखाकर कथा समाप्त कर दी गई ।

आगमयुग के पश्चात् दूसरा युग प्राकृत आगमिक व्याख्याओं का युग है । इसे उत्तर प्राचीन काल भी कह सकते है । इसकी कालावधि ईसा की दूसरी-तीसरी शती से लेकर सातवीं शती तक मानी जा सकती है । इस कालावधि में जो महत्त्वपूर्ण जैन कथाग्रन्थ अर्धमागधी प्रभावित महाराष्ट्री प्राकृत में लिखे गये उनमें विमलसूरि का पउमचरियं, संघदासगणि की वसुदेवहिण्डी और अनुपलब्ध तरंगवई कहा प्रमुख है । इस काल की अन्तिम शती में यापनीय परम्परा में संस्कृत में लिखा गया वराङ्गचरित्र भी आता है। यह भी कहा जाता है कि विमलसूरि ने पउमचरियं (रामकथा) के समान ही हरिवंश चरियं के रूप में प्राकृत में कृष्ण कथा भी लिखी थी, किन्तु यह कृति उपलब्ध नहीं है । इन काल के इन दोनों कथाग्रन्थों की विशेषता यह है कि इनमें अवान्तर कथाएं अधिक है । इस प्रकार इन कथाग्रन्थों में कथाप्ररोह शिल्प का विकास देखा जा सकता है । इस काल के कथा ग्रन्थों में पूर्व भवान्तरो की चर्चा भी मिल जाती है ।

स्वतन्त्र कथाग्रन्थों के अतिरिक्त इस काल में जो प्राकृत आगमिक व्याख्याओं के रूप में निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णी साहित्य लिखा गया है उनमें अनेक कथाओं के निर्देश है । यद्यपि यहाँ यह ज्ञातव्य है कि निर्युक्तियों में जहाँ मात्र कथा संकेत है वहाँ भाष्य और चूर्णि में उन्हें क्रमशः विस्तार दिया गया है । धूर्ताख्यान की कथाओं का निशीथभाष्य में जहाँ मात्र तीन गाथाओं में निर्देश है, वही निशीथचूर्णि में ये कथाएँ तीन पृष्ठों में वर्णित है । इसी को हरिभद्र ने अधिक विस्तार देकर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना कर दी है।

इस काल के कथा साहित्य की विशेषता यह है कि इसमें अन्य परम्पराओं से कथावस्तुको लेकर उसका युक्ति-युक्त करण किया गया है, जैसे पउमचरियं मे रामचरित्र में सुग्रीव हनुमान को वानर न दिखाकर वानरवंश के मानवों के रूप चित्रित किया गया है । इसी प्रकार रावण को राक्षस न दिखाकर विद्याधर वंश का मानव ही माना गया है । साथही कैकयी, रावण आदि के चरित्र को अधिक उदात्त बनाया गया है । साथ ही धूर्ताख्यान की कथा के माध्यम से हिन्दू पौराणिक एवं अवैज्ञानिक कथाओं की समीक्षा भी व्यङ्गात्मक शैली में की गई है । राम और कृष्ण को स्वीकार करके भी उनको ईश्वर के स्थान पर श्रेष्ठ मानव के रूप में ही चित्रित किया गया है। दूसरे आगमिक व्याख्याओं विशेष रूप से भाष्यों और चूर्णियों में जो कथाएँ है, वे जैनाचार के नियमों और उनकी आपवादिक परिस्थितियों के स्पष्टीकरण के निमित्त है ।

जैन कथा साहित्य के कालखण्डों में तीसरा काल आगमों की संस्कृत टीकाओं तथा जैन पुराणों का रचना काल है । इसका कालावधि ईसा की ८ वीं शती से लेकर ईसा की १४ वीं शती मानी जा सकती है । जैन कथा साहित्य की रचना की अपेक्षा से यह काल सबसे समृद्ध काल है । इस कालावधि में श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय तीनों ही परम्पराओं के आचार्यों और मुनियों ने विपुल मात्रा में जैन कथा साहित्य का सृजन किया है । यह कथा साहित्य मुख्यतः चरित्र-चित्रण प्रधान है । यद्यपि कुछ कथा-ग्रन्थ साधना और उपदेश प्रधान भी है । जो ग्रन्थ चरित्र-चित्रण प्रधान है वे किसी रूप में प्रेरणा प्रधान तो माने ही जा सकते है । दिगम्बर परम्परा के जिनसेन (प्रथम) का आदिपुराण, गुणभद्र का उत्तरपुराण, रविषेण का पद्मचरित्र, जिनसेन द्वितीय का हरिवंश पुराण आदि इसी कालखण्ड की रचनाएँ है । श्वेताम्बर परम्परा में हरिभद्र की समराइच्चकहा, कौतूहल कवि की लीलावईकहा, उद्योतनसूरि की कुवलयमाला, सिद्धर्षि उपमितिभवप्रपञ्चकथा, शीलाङ्क का चउपन्नमहापुरिसचरियं, धनेश्वरसूरि का सुरसुन्दरीचरियं, विजयसिंहसूरि की भुवनसुन्दरीकथा, सोमदेव का यशस्तिलकचम्पू, धनपाल की तिलकमञ्जरी, हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, जिनचन्द्र की संवेगरङ्गशाला, गुणचन्द्र का

महावीरचरियं एवं पासनाहचरियं, देवभद्र का पाण्डवपुराण आदि अनेक रचनाएँ है । इस कालखण्ड में अनेक तीर्थङ्करों के चरित्र-कथानकों को लेकर भी प्राकृत और संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे गये है, यदि उन सभी का नाम निर्देश भी किया जाये तो आलेख का आकार बहुत बढ जावेगा । इस कालखण्ड की स्वतन्त्र रचनाएँ शताधिक ही होगी ।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इस काल की रचनाओं में पूर्वभवों की चर्चा प्रमुख रही है । इससे ग्रन्थों के आकार मे भी वृद्धि हुई है, साथ ही एक कथा में अनेक अन्तर कथाएँ भी समाहित की गई है । इसके अतिरिक्त इस काल के अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों और उनकी टीकाओं में भी अनेक कथाएँ संकलित की गई है – उदाहरण के रूप में हरिभद्र की दशवैकालिक टीका में ३० और उपदेशपद में ७० कथाएँ गुम्फित है । संवेगरङ्गशाला में १०० से अधिक कथाएँ है । पिण्डनिर्युक्ति और उसकी मलयगिरि की टीका में भी लगभग १०० कथाएँ दी गई है । इस प्रकार इस कालखण्ड में न केवल मूल ग्रन्थों और उनकी टीकाओं में अवान्तर कथाएँ संकलित है, अपितु विभिन्न कथाओं का संकलन करके अनेक कथाकोशों की रचना भी जैनधर्म की तीनों शाखाओं के आचार्यों और मुनियों द्वारा की गई है – जैसे - हरिषेण का ''बृहत्कथाकोश'', श्रीचन्द्र का ''कथा-कोश'', भद्रेश्वर की ''कहावली'', जिनेश्वरसूरिका ''कथा-कोष प्रकरण'' देवेन्द्र गणि का ''कथामणिकोश'', विनयचन्द्र का ''कथानक कोश'', देवभद्रसूरि अपरनाम गुणभद्रसूरि का ''कथारत्नकोष'', नेमिचन्द्रसूरि का ''आख्यानक मणिकोश'' आदि । इसके अतिरिक्त प्रभावकचरित्र, प्रबन्धकोश, प्रबन्धचिन्तामणि आदि भी अर्ध ऐतिहासिक कथाओ के संग्रहरूप ग्रन्थ भी इसी काल के हैं । इसी काल के अन्तिम चरण से प्रायः तीर्थों की उत्पत्ति कथाएँ और पर्वकथाएँ भी लिखी जानी लगी थी । पर्व कथाओं में महेश्वरसूरि की 'णाणपंचमीकहा' (वि.सं. ११०९) तथा तीर्थ कथाओं में जिनप्रभ का विविधतीर्थकल्प भी इसी कालखण्ड के ग्रन्थ है । यद्यपि इसके पूर्व भी लगभग दशवीं शती में ''सारावली प्रकीर्णक'' में शत्रुञ्जय तीर्थ की उत्पत्ति कथा वर्णित है । यद्यपि अधिकांश पर्व कथाएँ और तीर्थोत्पत्ति की कथाएँ उत्तरमध्यकाल में ही लिखी गई हैं ।

इसी कालखण्ड में हार्टल की सूचनानुसार ब्राह्मणपरम्परा के पञ्चतन्त्र की शैली का अनुसरण करते हुए पूर्णभद्रसूरि नामक जैन आचार्य ने भी पञ्चतन्त्र की रचना की थी ।

ज्ञातव्य है कि जहाँ पूर्व मध्यकाल में कथाएँ संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में लिखी गई, वही उत्तरमध्यकाल में अर्थात् ईसा की १६ वीं शती से १८ वीं शती तक के कालखण्ड में मरूगुर्जर भी कथा लेखन का माध्यम बनी है । अधिकांश तीर्थमाहात्म्य विषय कथाएँ, व्रत, पर्व और पूजा विषयक कथाएँ इसी कालखण्ड में लिखी गई है । इन कथाओं में चमत्कारों की चर्चा अधिक है । साथ ही अर्धऐतिहासिक या ऐतिहासिक रासो भी इसी कालखण्ड में लिखे गये है ।

इसके पश्चात् आधुनिक काल आता है, जिसका प्रारम्भ १९वीं शती से माना जा सकता है । जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके है यह काल मुख्यतः हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचित कथा साहित्य से सम्बन्धित है । इस काल में मुख्यतः हिन्दी भाषा में जैन कथाएँ और उपन्यास लिखे गये । इसके अतिरिक्त कुछ श्वेताम्बर आचार्यों ने गुजराती भाषा को भी अपने कथा-लेखन का माध्यम बनाया । क्वचित् रूप में मराठी और बंगला में भी जैन कथाएँ लिखी गई । बंगला मे जैन कथाओ के लेखन का श्रेय भी गणेश ललवानी को जाता है । इस युग में जैन कथाओं और उपन्यासों के लेखन में हिन्दी कथा शिल्प को ही अपना आधार बनाया गया है । सामान्यतया जैन कथाशिल्प की प्रमुख विशेषता नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना ही रही है, अतः उसमें कामुक कथाओं और प्रेमाख्यानकों का प्रायः अभाव ही देखा जाता है । यद्यपि वज्जालग्गं तथा महाकाव्यों के कुछ प्रसंगों का छोड दे तो प्रधानता नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना की ही रही है । यद्यपि कथाओं को रसमय बनाने के हेतु कही-कहीं प्रेमाख्यानकों का प्रयोग तो हुआ है फिर भी जैन लेखकों को मुख्य प्रयोजन तो शान्तरस या निर्वेद की प्रस्तुति ही रहा है।

जैन कथाओं का मुख्य प्रयोजन :

जैन कथा साहित्य के लेखक के अनेक प्रयोजन रहे है, यथा-

१. जन सामान्य का मनोरञ्जन कर उन्हें जैन धर्म के प्रति आकर्षित करना ।

२. मनोरञ्जन के साथ-साथ नायक आदि के सद्‌गुणों का परिचय देना।

३. शुभाशुभ कर्मों के परिणामो को दिखाकर पाठकों को सत्कर्मों या नैतिक आचरण के लिए प्रेरित करना ।

४. शरीर की अशुचिता एवं सांसारिक सुखों की नश्वरता को दिखाकर वैराग्य की दिशा में प्रेरित करना ।

५. किन्ही आपवादिक परिस्थितियों में अपवाद मार्ग के सेवन के औचित्य और अनौचित्य को स्पष्ट करना ।

६. पूर्वभवों या परवर्तीभवों के सुख-दुःखों की चर्चा के माध्यम से कर्म सिद्धान्त की पुष्टि करना ।

७. दार्शनिक समस्याओं का उपयुक्त दृष्टान्त एवं संवादों के माध्यम से सहज रूप मे समाधान प्रस्तुत करना जैसे - आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि के रायपसेनीय के कथानक में राजा के तर्क और केशी द्वारा उनका उत्तर । इसी प्रकार क्रियमान कृत या अकृत है – इस सम्बन्ध में जमाली का कथानक और उसमें भी साड़ी जलने का प्रसंग ।

इस प्रकार हम देखते है कि जैन कथा साहित्य बहुउद्देशीय बहु आयामी और बहुभाषी होकर भी मुख्यतः उपदेशात्मक और आध्यात्मिक रहा है । उसका प्रमुख उद्देश्य निवृत्ति मार्ग का पोषण ही है । इस प्रकार वह सोद्देश्य और आध्यात्मिक मूल्यों का संस्थापक रहा है और लगभग तीन सहस्राब्दियों से निरन्तर रूप से प्रवाहमान है ।

संस्थापक निदेशक प्राच्यविद्यापीठ
दुपाड़ा रोड, शाजापुर (म.प्र.) ४६५००१